महान् युग निर्माता

अमृतलाल नागर

महान् युग-निर्माता

अमृतलाल नागर

राजपाल

मूल्य : बीस रुपये (20.00)

संस्करण : 2003
ISBN : 81-7028-217-9

Mahan Yug Nirmata by Amritlal Nagar

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

www.rajpalsons.com

क्रम

1

महात्मा ज़रथुष्ट्र

मेरे हाथ में एक जादू का दर्पण है जिसे इतिहासकारों और पुरातत्वविदों की लगन और वैज्ञानिक चिंतन प्रणाली ने बड़ी मेहनत से बनाया है। इस दर्पण में देखने से बहुत-सी पौराणिक या परी कथाएं, जिन्हें हम अब तक कोरी मनगढ़न्त गप्पें या धार्मिक अंध विश्वास की खान मानते रहे हैं, बहुधा हमें इतिहास की खोयी हुई कड़ियां जोड़ने वाली अनमोल सामग्री के रूप में दिखलाई देने लगती हैं। पुराने कबाड़खाने में छिपे हुए नये रतन चमक उठते हैं।

आइये, नई दुनिया को बनाने के उद्देश्य से इस जादुई दर्पण को अपने हाथ में लेकर हम और आप पुरानी दुनिया की सैर करें।

मेरा जादू का दर्पण सचमुच बड़ा निराला है। अपने दृश्यों के झूले में पेंगें लेते हुए वह काल के अलग-अलग खण्डों में हमें सहसा उछाल कर पहुंचा देता है। आज की



मानव जाति अपनी सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए जिन महात्माओं के प्रति अपना उपकार मानते हुए नहीं अघाती, उनमें से अनेक का बखान करते हुए यह जादुई दर्पण ऐसा समां बांधता है कि कोरी अंध श्रद्धा की कल्पना के पौराणिक पात्र इतिहास के जीते जागते यथार्थ चित्र बन जाते हैं। इस तरह हमारी वह श्रद्धा जो जब तक बेचारी अंधी थी, अब इतिहास की आंखें पाकर बहुत सुन्दर हो उठती है।

लेकिन देखिये तो सही, यह अलबेला दर्पण मुझे अपनी प्रशंसा करने से रोक रहा है। वह मुझे ईरान के सुन्दर गुलाबों बसे देश में अपनी झलकियों के साथ-साथ उड़ाए लिए चला जा रहा है। यह समय लगभग वही है जो हमारे देश में भगवान् बुद्ध के जन्म होने का था। आपने सिकन्दर महान से पराजित होने वाले फारस ईरान के शहंशाह दारा उर्फ डेरियस उर्फ दार्युष का नाम अवश्य ही सुना होगा। यह उसके पिता सम्राट् विस्तास्प के राज में हमारे जादुई दर्पण ने हमारा प्रवेश करा दिया। उस समय भारत से लेकर ईरान, उज्बेकिस्तान, तुर्किस्तान, आइज़रबैजान आदि मध्य एशिया के दूर-दूर देशों में फैली हुई समस्त आर्य जातियों में एक वैचारिक हलचल मच रही थी। लोगों की श्रद्धा पुराने ढंग के कर्मकाण्ड में थोड़ी-बहुत थी तो ज़रूर, मगर वह समय ऐसा ही था कि किसी को किसी पर विश्वास

न था। सब अपनी-अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी पका लगे थे। फ़ारस अथवा पारस्य देश के राजा विस्तास्प अपने देश में एक प्रतापी राजा हुए थे। उनको अपने ही आर्य-परंपरा के पुराने इतिहास में आमतौर से अपने उन भाई-बिरादरों के अधीन रहना पड़ा था जो भरतवंशी आर्य कहलाने लगे थे। भरत, रघु, दशरथ, रामचन्द्र, कुश तथा चन्द्र वंश के दुष्यंत-पुत्र भरत आदि बहुत से भारतीय सम्राट् उन देशों पर राज्य कर चुके थे। अब ऐसा समय आया था कि फारस-ईरान के आर्यवंशी अपना वैभव बढ़ा रहे थे। इसलिए उनमें एक प्रकार का अभिमान भी हो चला था। उन्हें विशेष रूप से एक खीझ यह थी कि अपने वैभव के ज़माने में भी उनके सांस्कृतिक और धार्मिक नेता वे थे जो अफ़गानिस्तान की सरयू, सरस्वती और गोमती, जिन्हें अब वहां पर हरयू या हरीरुद, हरउवती और गोमल कहते हैं, से लेकर हिन्दुस्तान की सरस्वती, सरयू और गोमती तक फैले हुए थे। अपने ऋग्वेदिक धर्म के भाई-बन्दों को अपना धार्मिक नेता मानने से वे संकोच करने लगे थे।

हर देश के इतिहास की अपनी कुछ ज़रूरतें हुआ करती हैं और उसके लिए कुछ कारण भी अवश्य ही हुआ करते हैं। अगर हम अपने संस्कृत साहित्य की बहुत-सी बातों पर ध्यान दें तो हमें लगेगा कि यहां के ब्राह्मणों ने बल्ख़,

ईरान आदि के ब्राह्मणों को म्लेच्छ घोषित किया है। उन्हें कई-कई रोज़ तक न नहाने वाला बतला कर घृणा बतलाई है। दुर्भाग्यवश हमारे पुरखों ने अपनों को पराया बना देने का ऐसा विष बीज बोया कि जिससे हम आज भी पूरी तरह से उभर नहीं पाए। खैर, इसी तरह के ईरानी जन-मानस में उनके राष्ट्र की इच्छापूर्ति करने के लिए ही मानो महात्मा ज़रथुष्ट्र का अवतार हुआ था। कहते हैं कि जब इनका जन्म हुआ तो पहाड़ों से संगीत की ध्वनियां मुखरित हुई थीं, दसों दिशाएं प्रकाश से भर उठी थीं। उस दिन मानो पारस्य देश में एक नया सूरज उगा था। महात्मा ज़रथुष्ट्र को बचपन में उसी प्रकार अनेक बार मौत का सामना करना पड़ा जैसे हमारे श्रीकृष्ण भगवान् के बारे में कहा जाता है। जिस प्रकार कंस की भेजी हुई पूतना जैसी राक्षसियों-राक्षसों आदि ने शिशु कृष्ण को मारने का षड्यंत्र किया था, उसी तरह अहुर मज़्द अर्थात् असुर महत् के दुश्मन अर्हिमान ने शिशु ज़रथुष्ट्र को मारने के लिए दुष्टों को भेजा। परन्तु अहुर मज़्द की ऐसी कृपा हुई कि दुश्मन कुछ न बिगाड़ सका और ये धीरे-धीरे बड़े होने लगे। जब यह सात वर्ष के थे तब भगवान् अहुर मज़्द ने इन्हें शिक्षा लेने के लिए एक उत्तम गुरु की शरण में भेज दिया। उसने इनको अच्छी शिक्षा दी लेकिन शिक्षा में उन्हें वही संस्कार मिले जो हमारे देश के ब्राह्मणों को

मिलते थे। आगे चलकर महात्मा ज़रथुष्ट्र ने जिस महान् ग्रन्थ 'ज़ेन्दा अवेस्ता' की रचना की, उसमें ऋग्वेद के बहुत से मंत्र ज्यों के त्यों रखे हुए हैं। जिस शब्द को हम लोग मंत्र कहते हैं, वही पारस्य देश में उच्चारण भेद हो जाने से मान्थ्र् कहा जाता है। मिसाल के तौर पर उनके एक मान्थ्र् का एक अंश पढ़िये—

यथा अहू वइर्यो।
अथा रतुश् अषात्चीत हचा वं ह।
उश् दज़्दा मनंहो।

अब अपना मंत्र देखिये—

यथा अशुः वर्यो। अथा रतुः अषात् चित् सचा वसोः दक्षाः मनसः।

दोनों का अर्थ एक है यानी जैसे सांसारिक सुरक्षा और सुख देने वाला राजा वंदना के योग्य होता है वैसे ही आध्यात्मिक उन्नति का दाता अवतारी धर्मगुरु भी वन्दनीय है। आप यह भी देखेंगे कि इन दोनों मंत्रों में शब्दों का तनिक भी हेर-फेर नहीं है। सिर्फ 'स' का उच्चारण 'ह' हो जाता है। दक्षा शब्द दज़्दा हो जाता है या मनशः मनंहो हो जाता है। ये भेद कोई भेद नहीं हैं। असली विरोध प्रकट करने वाले महात्मा ज़रथुष्ट्र के दो शब्द मानो सारा इतिहास खोल देते हैं। आप इस बात

पर ध्यान दें कि हमारे पुराणों में देव शब्द बड़े आदर की जगह पाता है और असुर शब्द घृणा और अनादर की। ईरानी पौराणिक कहानियों में असुर शब्द का स्थान उतना ही ऊंचा है जितना हमारे यहां देव शब्द का है और देव शब्द का उतना ही नीचा है जितना हमारे यहां असुर का है। यह असुर और देव शब्द ही उस झगड़े की झलक हमें साफ-साफ दिखला देते हैं। एक समय था जब कि ऋग्वेद के मंत्रों में इन्द्र को असुर कहकर उनकी वंदना की जाती थी। तब ईरान से लेकर भारत तक फैले हुए आर्यों में वैचारिक झगड़ा नहीं था। असुर के माने प्राणवान् होते हैं। दिव, जिससे कि देव शब्द बना, चमक के अर्थ में हमें आत्मा का बोध कराता है। आत्मा, सूर्य, अग्नि आदि की वन्दना करने वाले लोग देव कहलाए। इस नये विचार का प्रचार करने वालों में हमारे पुरखे अर्यमा अथवा अर्हिमान शायद प्रमुख रहे होंगे और उस अर्यमा या अर्हिमान के वंश से महात्मा ज़रथुष्ट्र के वंश तथा और भी अनेक ईरान राष्ट्र के पुराने वंशों को शायद कोई बड़ा विश्वासघात या और किसी तरह की दुश्मनी से नुकसान उठाना पड़ा होगा। इसलिए महात्मा ज़रथुष्ट्र ने अर्यमा के तथा देवों के विरुद्ध एक घनघोर आन्दोलन छेड़ दिया। उन्होंने सोम को हओम् कहकर पूजा और सुमत, सूक्त और सुकृत को अपनी भाषा में हुमत, हुख़्त और हूर्स्त कहकर वही मान्यता प्रदान की

जो हमारे यहां दी जाती है। महात्मा ज़रथुष्ट्र ने अग्नि पूजा को भी वैसा ही महत्त्व दिया जैसा हमारे यहां है। उनका विरोध सिर्फ वैदिक यज्ञ करने वाले यज्ञ पूजकों से ही था।

कोई-कोई महात्मा ज़रथुष्ट्र की जन्मभूमि आइज़रबैज़ान यानी पुराने अत्रिपत्तन को मानते हैं। उनका यह कहना है कि जन्मभूमि आइज़रबैज़ान में ज़रथुष्ट्र का देव विरोधी आन्दोलन सफल न हो सका और वे ईरान चले आए। वहां पहले तो उन्हें तंग किया गया पर सम्राट् विस्तास्प को उनकी बातें सुनकर उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई। महात्मा ज़रथुष्ट्र विचारों में मध्यमार्गी थे। जिस तरह भारत में उनके समकालीन महात्मा बुद्ध ने तप और कर्म के सिद्धान्तों के बीच अपने समय के सत्य को देखा और मध्यमार्ग का उपदेश दिया, शायद उसी तरह महात्मा ज़रथुष्ट्र ने भी अपने देश में फैले यहूदी, वैदिक और काल्डियन धर्मों के बीच में एक मध्यमार्ग निकालकर सारे राष्ट्र को एक नई धार्मिक एकता प्रदान कर दी। यह शाह विस्तास्प, जिसे शाहनामे में गुस्तास्प कहकर बखाना गया है, महात्मा ज़रथुष्ट्र के धर्म का प्रचार करने में बहुत सफल रहे। राष्ट्रीय एकता की नई शक्ति पाकर शाह विस्तास्प ने कई देश जीते। उन्होंने एक प्रकार से धार्मिक युद्ध ही छेड़ दिया था। लेकिन इन्हीं धार्मिक युद्धों के कारण राजा की तो जीत हुई पर राष्ट्र को प्रकाश देने वाला सूर्य दुश्मनों

से घिर गया। कहते हैं कि अपने असली सहायक पुजारियों के साथ महात्मा ज़रथुष्ट्र अग्नि मन्दिर में बैठे हुए पूजा कर रहे थे कि दुश्मन ने मन्दिर पर अचानक हमला कर दिया और महाज्योति बुझा दी गई। दुश्मनों ने अवेस्ता ग्रन्थ, अग्नि मन्दिर और महात्मा ज़रथुष्ट्र तथा उनके सारे सहायकों का नाश कर दिया।

कहते हैं कि जब महात्मा के प्राण निकले तो आकाश पर इन्द्रधनुष उदय हो आया। अपने जीवन काल में एक बार महात्मा ज़रथुष्ट्र ने अहुरमज़्द से अपनी समाधि अवस्था में पूछा था कि भगवान्, आकाश में यह सतरंगा धनुष किसलिए प्रकट होता है ?

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया था कि यह धनुष आकाश की उन महान् आत्माओं की मुस्कराहट है जो दुनिया के दुखी पुरुषों को साहस दिलाने के लिए उदय होती हैं। महात्मा ज़रथुष्ट्र के शहीद होने पर उस सतरंगे धनुष ने उदय होकर शाह विस्तास्प या गुस्तास्प को ऐसा अपार बल और शासन दिया कि उसने अंत में अवतारी महात्मा के हत्यारों को धूल में मिला दिया।



2

गौतम बुद्ध

ईरान के महात्मा जरथुष्ट्र को श्रद्धा अर्पित करने के बाद मैं सोच रहा था कि अब मेरा जादुई दर्पण मुझे निश्चय ही महात्मा बुद्ध के दर्शन कराएगा। मैंने दर्पण से यह बात पूछी तो वह मुझे चुप कराते हुए बोला—'चुप-चुप, देखो, बिहार में भिक्खु लोग प्रार्थना कर रहे हैं और जानते हो यह दृश्य कहां का है ?'

मैंने कहा—'देखने से यह अशोक के जमाने की लाट लगती है। निश्चय ही यह भगवान् बुद्ध से संबंधित कोई स्थान रहा होगा।'

'ठीक कहते हो, यह लुम्बिनी ग्राम है। भगवान् बुद्ध का जन्म यहीं हुआ था।'

मैंने कहा—'दर्पण, तुमने अब तक मुझे जितने इतिहास-पुरुषों की झलकें दिखलाईं, उनकी कथाएं पहले से जानते हुए भी तुम्हारे बखानों से वे मुझे नई लगीं। क्या भगवान् बुद्ध की जीवन कथा में भी तुम मुझे ऐसी ही कोई विशेषता

बतलाने जा रहे हो ?'

नटखट दर्पण ऐसे हिलने लगा जैसे इन्कार करते हुए कोई अपना सिर हिला रहा हो। उसने कहा—'ना भाई ना, मैं तुम्हें कुछ भी नहीं बतलाऊंगा। बस कथा सुनो और खुद ही यह बतलाओ कि तुमने भगवान् बुद्ध के जीवन में ऐसी क्या खास बात देखी। लेकिन ठहरो, देखो, वह सामने से रथ आ रहा है।'

मैंने देखा एक लम्बा, बलिष्ट और सुन्दर राजकुमार रथ पर चला आ रहा है। लोग कपिलवस्तु की सड़कों पर किनारे खड़े हुए झुक-झुक कर राजकुमार सिद्धार्थ को प्रणाम कर रहे हैं। सिद्धार्थ बहुत खुश है। उसे अपने चारों ओर हँसते और खिलते जवान चेहरे ही दिखलाई दे रहे हैं। मैंने कहा—'दर्पण, क्या राजा शुद्धोदन की राजधानी में बूढ़े नहीं बसते ?'

दर्पण बोला—'तुमने अपनी यह इच्छा प्रकट करके राजकुमार के जीवन का सारा ढर्रा ही बदल दिया। वह देखो, राजकुमार का रथ रुक गया है और वे बड़े आश्चर्य से एक कमर झुके हुए दीन-हीन बुड्ढे को सड़क के किनारे रेंग-रेंग कर चलते हुए देख रहे हैं। लाठी का सहारा लिए, कांपते डग बढ़ाकर वह बुड्ढा कैसी मुश्किल से अपना रास्ता तय कर पा रहा है।'

कैसे आश्चर्य से राजकुमार सिद्धार्थ उसको देख रहे हैं, राजकुमार ने अपने सारथी से पूछा—'चन्ना, देखने में तो यह कुछ-कुछ मनुष्यों से मिलता हुआ ही प्राणी है, पर बतलाओ कि यह वास्तव में है कौन ?'

सारथी का चेहरा एकदम से पीला पड़ गया। उसे इस बात की घबराहट थी कि यदि राजा शुद्धोदन यह सुन लेंगे तो आज मेरी तथा दूसरे राजकर्मचारियों की बड़ी आफत आ जाएगी। राजा ने अपने कर्मचारियों को यह हुक्म दे रखा था कि राजकुमार ऐसी कोई भी चीज कभी न देख पाएं जिससे कि उनके मन को धक्का लगे। राजकुमार जब पैदा हुए थे तब ज्योतिषियों ने उन्हें यह बतलाया था कि यह राजकुमार विश्वविजयी होगा, या तो चक्रवर्ती राजा के रूप में और या फिर महान् धर्म गुरु के रूप में। ज्योतिषियों की बात ने राजा शुद्धोदन के मन में यह शंका जमा दी थी कि मेरा बेटा कहीं साधु न हो जाए और इसीलिए उन्होंने अपने नौकरों-चाकरों को यह आदेश दे रखा था कि राजकुमार के सामने कोई भी ऐसी बात न तो कही जाए और न दिखलाई जाए, जिससे कि उनके मन में वैराग्य भाव उपजे। उन्हें सदा नाच-गाने और खेल-तमाशों से बहलाया जाता था। उन्हें राजा बनने के लिए अच्छे-अच्छे गुरुओं से शिक्षा दिलाई गई थी। उनके आस-पास का हर आदमी राजा की आज्ञा से सिद्धार्थ को बहादुरी

की कथाएं, नये राज्यों को जीतने के उपाय आदि समझाया करता था। जब कभी राजकुमार बाहर घूमने की इच्छा करते तब सिपाही लोग पहले से आकर दीन-दुखी और बूढ़ों को हटा दिया करते थे, लेकिन आज संयोग से राजकुमार को बुढ़ापे का यह रूप देखने को मिल ही गया। राजकुमार के सवाल करने पर चन्ना सारथी पहले तो सकपका गया फिर उसने यही उचित समझा कि वह राजकुमार से सच बात कहे। चन्ना बोला—'हे राजकुमार, यह भी मनुष्य ही है।'

'लेकिन मैंने ऐसा मनुष्य अपने जीवन में पहली ही बार देखा। क्या मनुष्य ऐसे भी हुआ करते हैं ?'

'हां राजकुमार, हर मनुष्य के जीवन में यह दिन भी अवश्य आते हैं। बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होकर जवान होता है और फिर यों ही बूढ़ा हो जाता है।'

'तब एक दिन मैं भी इसी तरह बूढ़ा हो जाऊंगा। मेरा यह सुन्दर मुख और शरीर एक दिन ऐसे ही झुर्रियों-भरा हो जाएगा। यह काले घुंघराले बाल सफेद हो जाएंगे। मेरी कमर ऐसे ही झुक जाएगी और मैं लाठी लेकर यों ही रेंग-रेंग कर चला करूंगा।' इन बातों से राजकुमार सिद्धार्थ उस दिन बड़े ही गम्भीर और विचारमग्न रहे। जब राजा को इस बात का पता चला तो वे अपने कर्मचारियों पर

बहुत नाराज़ हुए। मगर होनी को कौन रोक सकता है, राजकुमार सिद्धार्थ को भगवान् ने धरती पर राजमुकुट धारण करने के लिए नहीं भेजा था। एक दिन फिर ऐसे ही बानक बन गए। राजकुमार सिद्धार्थ ने देखा कि कुछ आदमी बांस की टिकटी पर लिपटी हुई कोई चीज़ उठाकर लिए जा रहे हैं और उनके पीछे-पीछे कुछ आदमी रोते हुए भी चल रहे हैं। सिद्धार्थ ने पूछा—'यह लोग क्या लिए जा रहे हैं और पीछे वाले रो क्यों रहे हैं। रथ रोको चन्ना, मैं इन रोने वाले दुखी जनों के साथ न्याय करूंगा। यह लोग अवश्य ही कोई बहुमूल्य वस्तु लूट कर ले जा रहे हैं।' बेचारा चन्ना फिर घबरा उठा। आखिर वह क्या जवाब दे। अगर सच बोलता है तो राजा उससे नाराज़ हो जाएंगे और यदि वह झूठ बोलना चाहे तो राजकुमार इस पर विश्वास नहीं करेंगे।

राजकुमार ने फिर कहा—'इन रोने वालों का माल लूट कर जाते हुए लोगों को रोको, चन्ना, मैं इनका रोना नहीं देख सकता।'

चन्ना बोला—'राजकुमार, यह सच है कि जिस लिपटी हुई वस्तु को लेकर आगे वाले लोग जा रहे हैं, वह कभी इन रोने वाले लोगों के लिए अवश्य ही मूल्यवान् रही होगी परंतु अब वह केवल जलाने या धरती में गाड़ देने के ही योग्य हो गई है।'

'क्यों ?'

'यह लिपटी हुई वस्तु किसी स्त्री या पुरुष का शव है, राजकुमार।'

'शव क्या होता है, चन्ना ?'

'मनुष्य पैदा होता है, फिर धीरे-धीरे बड़ा होता है, जवान और बूढ़ा होता है, उसे बाद मर कर शव बन जाता है, फिर उसे फूंक दिया जाता है।'

सुनकर राजकुमार सिद्धार्थ गम्भीर हो गए। थोड़ी देर तक सोचते रहने के बाद वे बोले—'तब मैं भी एक दिन इसी तरह शव बनकर कपड़े में लिपटा हुआ चार के कन्धों पर जाऊंगा ?'

चन्ना बोला—'हर जीवन का यही अंत होता है राजकुमार, हम सबके भाग्य में एक-न-एक दिन मरना बदा है।'

राजकुमार सिद्धार्थ की आंखें खुल गईं। उन्हें वह सब कुछ मालूम हो गया जिसे राजा शुद्धोदन ने उनसे छिपाने की चेष्टा की थी। उन्होंने बुढ़ापा देख लिया और जीवन के अंत का रूप भी देख लिया। अब न तो उनका मन नाच-गाने में लगता था और न कुछ ओढ़ने-पहनने में। वे अपनी नई ब्याही पत्नी यशोधरा से भी अब कम ही बोलते-चालते थे। दर्पण में अपनी सूरत देखना अब उन्हें

अच्छा नहीं लगता था। दर्पण जब उनके सामने लाया जाता तो वे उसमें अपने बुढ़ापे के झुर्रियों-भरे चेहरे को अपनी कल्पना-भरी आंखों से देखने लगते थे और उदास हो जाते थे। एकांत में बैठे- बैठे वह सोचने लगते कि एक दिन मेरे माता-पिता, जो अब बूढ़े हो चले हैं, मर जाएंगे। मैं उन्हें फिर कभी नहीं देख सकूंगा। यह सब जो मेरे आस-पास हँसते-बोलते हैं, दौड़ते, भागते, फांदते हैं, एक दिन निर्जीव हो जाएंगे और फूंक दिए जाएंगे। मैं और मेरी प्यारी पत्नी यशोधरा भी बूढ़ी होगी और मर जाएगी। हम दोनों ही एक दिन फिर दुनिया में किसी को नहीं दिखलाई पड़ेंगे। छी ! छी ! ऐसा जीवन जो कि क्षणभंगुर है, नश्वर है, भला हमारे किस काम का है। इस जीवन के मोह से छूटने की कोई राह मुझे अभी से ही देख लेनी चाहिए।

राजकुमार धीरे-धीरे साधु-संन्यासियों की संगत चाहने लगे। राजा शुद्धोदन बहुत घबराने लगे। राजा शुद्धोदन ने बाद में सोचा कि यदि मैं राजकुमार की यह इच्छा पूरी नहीं करूंगा तो वह निश्चय ही इन साधु-संन्यासियों को खोजने के लिए महलों से भाग जाएगा। अपने बेटे को अपने पास रखने के लालच में राजा ने विद्वान् पुरुषों को सिद्धार्थ के पास बराबर भेजते रहने का प्रबन्ध कर दिया। योगी, तपस्वी, साधक, यज्ञ करने वाले, तरह-तरह के

विचारों के दार्शनिक विद्वान् राजकुमार के पास आने लगे। वे सभी उन्हें अपने-अपने धर्मों और तपस्या के तरीकों के सम्बन्ध में बातें बतलाते। राजकुमार सिद्धार्थ एकान्त में उन सब बातों पर गहरा विचार करते थे। उन दिनों हमारे भारत देश में इतने मत-मतान्तर फैले हुए थे कि जिनकी गिनती करना भी असंभव है। जो मत प्रमुख थे, उनकी संख्या भी साठ से ऊपर थी। कोई कहता कि आत्मा है, कोई कहता कि नहीं। कोई कहता ईश्वर है, कोई कहता नहीं है। ये अलग-अलग मतों वाले साधु लोग जब एक दूसरे के सामने आते तब बहस करते-करते आपस में ऐसे लड़ने लगते थे जैसे कुत्ते लड़ते हैं। राजकुमार सिद्धार्थ मतों और विचारों के नये-नये रूप देखते हुए दिनोंदिन अपने विचारों में पोढ़े होते चले गए। उन्हें यह लगने लगा कि मुझे अपना रास्ता आप खोजना पड़ेगा। 'अप्प दीपो भव'—अपने दीपक आप बनो।

उन्हीं दिनों कपिलवस्तु में एक त्योहार जैसा सुख देने वाला मंगलमय दिन आया। राजा शुद्धोदन एक पोते के बाबा बने। महल के कोने-कोने से संगीत की लहरें उठने लगीं। नगर की एक-एक गली झण्डियों से सज गई। घरों के आगे तरह-तरह की रंगोलियां चीती गईं। हर घर में ढोलक बज रही थी और बधावे गाये जा रहे थे। अमीर लोग गरीबों को खुश होकर दान दे रहे थे। गरीब लोग

बहुत-सा दान पाकर सम्पन्न बन गए थे। जब प्रजा जनों में ऐसी खुशी फैल रही थी, तब भला राजा के घर का क्या पूछना ! शुद्धोदन दोनों हाथों से मुक्त होकर अन्न, वस्त्र और सोने-चांदी का दान कर रहे थे। राज्य भर में इस समय भी अगर कोई दुखी था तो वह होने वाले बेटे का पिता था। सिद्धार्थ सोच रहे थे कि आज इसने जन्म लिया है तो खुशियां मनाई जा रही हैं, एक दिन जब यह बड़ा होकर मरेगा तब लोग रोएंगे, फिर ऐसे सुख से क्या लाभ जो अंत में दुखदाई बन जाता है ? सिद्धार्थ अपने मन के सवालों से अब परेशान हो गए थे, इसलिए उन्होंने घर छोड़कर सत्य की खोज करने का निश्चय किया। अपने सारथी को समझा-बुझा कर वे एक रात चुपचाप नगर से बाहर चले गए। उन्होंने अपने सारे कीमती गहने और कपड़े उतार कर रथ पर रख दिए। जन-साधारण की वेशभूषा में अपने आपको बदल कर सिद्धार्थ ने सारथी से कहा—'चन्ना, पिताजी से कहना कि जहां मेरा जी नहीं लगता वहां मुझे रोकने का प्रयत्न वे अब न करें। मैं अपने निश्चय पर अडिग हूं। मेरे पिता को उनकी गद्दी संभालने वाला मिल गया है।' चन्ना अपने स्वामी राजकुमार के पैर पकड़ कर बड़ी देर तक रोता रहा, परन्तु वे चरण जो पृथ्वी को तारने के लिए आए थे, अब एक छोटी-सी नगरी में और उसके छोटे से महल, छोटे-से कुनबे के चारों ओर

ही नहीं घूम सकते थे। 'चारों दिशाओं में चलते रहो और बहुतों का हित करो, बहुतों को सुख पहुंचाओ।' महापुरुष के चरण जो सत्य की खोज में आज चले तो फिर चल ही पड़े।

बुद्ध ने कठिन से कठिन तपस्या की और यह अनुभव पाया कि शरीर को बेकार इस तरह तपाने और कष्ट देने से कोई लाभ नहीं। यह सब ढोंग है। बुद्ध ने कुछ आर्य सत्यों को उजागर किया है, उनमें से पहला सत्य है दुःख। यह संसार दुख का घर है, मनुष्य का जीवन दुःखों से भरा हुआ है। इन दुःखों के कुछ कारण भी होते हैं लेकिन दुःख को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। दुख को रोकना चाहिए और इस बात पर ही गहरा विचार करना चाहिए कि इन सारे दुःखों के नाश के लिए हम क्या उपाय करें। बुद्ध ने सोचा कि सारे दुःखों की जड़ तृष्णा यानी लालच है। इसे रोकना चाहिए। ब्रह्मचर्य से बढ़कर दूसरा तप नहीं है। ब्रह्मचर्य साधने वाला दरअसल अपने को दुःखी नहीं करता बल्कि वह तप और अभ्यास से उस झूठे दुःख को दबा कर एक दिन यह अनुभव करता है कि उसने बहुत बड़ा सुख पा लिया है। उन्होंने अहिंसा के ऊपर बड़ा ज़ोर दिया। उन्होंने अपने मन की दुर्बलताओं पर विजय पाने लायक अपना मनोबल बढ़ाया और उसको बढ़ाने के सही तरीके पहचाने। उन्होंने सबसे पहले अपने उपदेशों पर आप ही अमल

किया। एक दिन जब वह गया में एक वृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न बैठे हुए थे तो उन्हें यह बोध हुआ कि आत्मा का मालिक स्वयं आत्मा ही है। आत्मा से ऊपर और कोई सत्ता नहीं है। आत्मा ही प्रयत्न से परमात्मा बन सकता है। परमात्मा बनने का उपाय मनुष्य के अपने ही हाथों में है। यह बोध होते ही वे 'बुद्ध' हो गए। उनका सिद्धार्थ नाम धीरे-धीरे लोग भूलने लगे। वे गौतम गोत्र के थे इसलिए गौतम बुद्ध कहलाए, वे शाक्य कबीले के थे इसलिए शाक्य सिंह या शाक्यमुनि भी कहलाने लगे। गौतम बुद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि उन्होंने केवल अपने आप को ही मोक्ष दिलाने की नीयत कभी नहीं रखी। वे सारी दुनिया का भला चाहते थे। इसका सबूत यह है कि उन्होंने दुनिया के हर इंसान का दिल प्रेम और सेवा से जीतकर उसके नैतिक धरातल को इस तरह से उठाने की चाह की जिससे कि हर आदमी बुद्ध हो जाए। उन्होंने तीन नारे लगाए :

(1) मैं बुद्ध की शरण में जाता हूं।

(2) मैं संघ की शरण में जाता हूं।

(3) मैं धर्म की शरण में जाता हूं।

बुद्धि-योग से बुद्ध होने और साथ ही साथ संघ-बद्ध होने को ही सही धर्म का रास्ता बतलाने वाले भगवान् बुद्ध पहले आदमी थे। आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए वे एक

ऐसा रास्ता खोल गए कि जिससे चलकर दुनिया के सारे धर्म आज तक हमारे साथ आए हैं। हां, यह बात और है कि बहुतों ने अपने भीतर वाले बुद्ध को किसी और तरीके से समझा हो। बुद्ध ने यह संघ का रास्ता सुझाकर धर्म को लोकव्यापी बनाने का एक सरल और सच्चा साधन मनुष्य जाति को दे दिया। ईसाई धर्म, शंकराचार्य, इस्लाम आदि सभी बाद में आने वाले धर्मों में हम जिस संघ-बद्धता का दर्शन करते हैं, वह भगवान् बुद्ध की देन है। आज भी साइबेरिया से लेकर चीन, जापान, लंका, ब्रह्मदेश, थाइलैण्ड आदि लगभग आधी दुनिया में बौद्ध मत के अनुयायी रहते हैं। भगवान् बुद्ध मानव जाति के एक महान् पुरखा थे।

3

महात्मा ईसा

लम्बी सुतवां नाक, लम्बे-लम्बे सुनहरे घुंघराले बाल, बड़ी-बड़ी आंखें, छोटी-सी दाढ़ी और मूंछें। लम्बा-सा चोगा पहने यह जवान काम तो बढ़ई का कर रहा है लेकिन इसके चेहरे पर इतना तेज है कि बड़े-बड़े राजे-महाराजों और आलिम पंडितों का तेज भी इसके आगे फीका पड़ जाए।

यह तेजवान युवक काम कर रहा है। एक दीन-दुखिया बुढ़िया, रोती हुई आती है, इसके पांव पकड़कर कहती है—'ईसू, मेरे मसीहा, मुझ दीन-अनाथ पर दया करके मेरे इकलौते लाल को मौत के मुंह से बचा लो।' ईसा उसे धीरज बंधाते हैं। उसके साथ उसकी झोंपड़ी में जाते हैं। बूढ़ी स्त्री का इकलौता बेटा अपनी अंतिम सांसें गिन रहा है। ईसा उसके पास खड़े होकर पूरे मन से भगवान् की प्रार्थना करते हैं, रोगी के सिर पर हाथ फेर कर प्यार से कहते हैं—'आंखें खोल, भगवान् ने तुझे अच्छा कर दिया।'

सैकड़ों रोगी दूर-दूर से नज़ारेथ गांव के इस चमत्कारी



बढ़ई के पास आते हैं। भगवान् से प्रार्थना करके वह जिस रोगी के सिर पर हाथ फेर देता है, वही चंगा हो जाता है। जेरूसलेम में, अरब में हर तरफ ईश्वर के बेटे ईसा मसीह का गुणगान हो रहा है।

आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पहले अपने को ईश्वर का बेटा कहने वाले इस चमत्कारी व्यक्ति ने एक कुंआरी माता से जन्म पाया था। उसका नाम मेरी था। जोज़ेफ नाम के एक सज्जन बढ़ई ने धर्म पिता बनकर उसे पाला-पोसा और उसका नामकरण किया। ईसा शुरू से ही शांत, गम्भीर और विचारवान् था। इन विशेषताओं के साथ ही साथ वह विद्रोही भी था। उसे झूठी धार्मिक बातों पर विश्वास नहीं था। वह किसी भी तरह के ढोंग को पसंद नहीं करता था। वह कभी-कभी धार्मिक गुरुओं से ऐसे पैने प्रश्न करता था कि वे सहसा जवाब न दे पाते थे। जिस तरह जीवन के जटिल प्रश्नों ने राजकुमार सिद्धार्थ को उलझाया था, उसी तरह ईसा भी उलझ रहे थे। वह अठारह बरसों तक अपने गांव से गायब रहे। कुछ लोग कहते हैं कि वे उतने समय तक भारत में रहे थे, लेकिन इस बात के पक्के प्रमाण हमारे पास नहीं हैं। हां, उन्होंने अरब में जोर्दान नदी के तट पर रहने वाले एक बप्तिस्त जान नामक संत की सेवा में कुछ समय अवश्य बिताया था। संत जान भी ढोंग विरोधी व्यक्ति थे। वे अंध धार्मिक

रूढ़ियों का खुलेआम विरोध करते थे। इसलिए यहूदी राजा ने उन्हें पकड़ लिया। अपने गुरु की गिरफ्तारी के बाद ईसा अपने गांव में चले आए, पर जब उन्होंने वहां पर खरी-खरी बातें कहना आरम्भ कीं, तब धर्मान्ध लोगों ने उन्हें पत्थरों से मारना शुरू कर दिया। घायल होकर ईसा शान्त रहते थे परन्तु सच्ची बातें कहने से वे फिर भी बाज नहीं आते थे। गांव वालों ने ईसा का वहां रहना दूभर कर दिया। भगवान् का भक्त स्वयं अपनी ही जन्मभूमि से मार-मार कर निकाल दिया गया। वह बेचारे वहां से भाग कर इधर-उधर भटकने लगे। इन सारे संकटों के बावजूद महात्मा ईसा की भगवद्‌भक्ति दिनोंदिन बढ़ती ही गई। चलते-चलते वे जूडिया की पहाड़ियों के पास पहुंच गए। वहां मछेरों और मजदूरों की एक बस्ती थी। उस बस्ती में पहुंच कर उन्होंने यह देखा कि गरीबी, रोगों तथा सभ्य दुनिया से पाये हुए अपमानों और अत्याचारों को सहते-सहते मनुष्य अपनी मनुष्यता को भूल कर किस प्रकार दयनीय पशु बन जाता है। सच पूछा जाए तो इस बस्ती में पहुंच कर ही ईसामसीह को अपने भीतर भगवान् की करुणा के साक्षात् दर्शन हुए। यहीं उनके भीतर मसीहा वाले दैवी गुण का उदय हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरी सेवाओं और उपदेशों की जरूरत ऐसे ही दबे-कुचले प्राणियों को है। उन्होंने बस्तीवालों से कहा—'मेरे साथ

चलो, हम लोग नगर-नगर, गांव-गांव, घूम कर दयालु भगवान् का गुणगान करेंगे और स्वर्ग की राजधानी को धरती पर लाकर बसाएंगे।'

मसीहा के साथ उनकी यह ईश्वरी सेना चल पड़ी। ये लोग पुरानी और सड़ी-गली धार्मिक रूढ़ियों की खुलेआम निन्दा करते थे। जिस गांव के लोग ईसा मसीह का सम्मान नहीं करते थे, उनके सच्चे धर्म को ठुकराते थे, उन्हें सजा देने के लिए ये लोग अक्सर इस तरह से भड़क उठा करते थे कि प्रभु मसीह के लिए उन्हें रोकना कठिन पड़ जाता था। बहुत से रोगी, जो उनकी दैवी शक्ति से चंगे हो जाते थे, वे और उनके परिवार के लोग भी महात्मा ईसा की धर्मसेना में शामिल हो जाते थे। इस प्रकार उनका धार्मिक संगठन दिनोंदिन बढ़ता और मजबूत होता जा रहा था।

ईसा मसीह बच्चों को बेहद प्यार करते थे। वे नन्हे-मुन्ने बच्चों को अपने दोनों कंधों पर बिठला लेते, किसी की उंगली पकड़ लेते और गांव में टहलने के लिए निकल पड़ते थे। बच्चों की सरल भोली बातों को सुनकर वे कहा करते—'बच्चों के स्वर में हमें भगवान् की वाणी सुनने को मिलती है।'

इस प्रकार महात्मा ईसा मसीह एक ओर जहां दीनबंधु बनकर हज़ारों-लाखों लोगों के आदर के पात्र बन

चुके थे, वहां ही यहूदी धर्म के पंडे-पुरोहित उन्हें अपना सबसे बड़ा शत्रु मानने लगे थे। कारण साफ था, ईसा धर्म के नाम पर बरते जाने वाले ढोंग और सड़ी-गली धार्मिक रूढ़ियों से घृणा करते थे। वे उनके विरुद्ध लगातार प्रचार किया करते थे। ईसा मसीह के इस सत्य-प्रचार से नाराज होकर पंडे-पुरोहितों ने उनके विरुद्ध षड्यंत्र किया। यहूदी राजा ने उन्हें बंदी बना लिया। जिस समय प्रभु ईसा मसीह को पकड़ा गया, उस समय ईसा मसीह के एक शिष्य पीटर ने क्रोध में आकर अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली। ईसा के इतने भक्त थे कि यदि वे तनिक-सा संकेत भी कर देते तो उनके हज़ारों भक्त राजा के सिपाहियों पर टूट पड़ते। यहूदियों में गृहयुद्ध छिड़ जाता। परन्तु महात्मा ईसा ने हाथ उठाकर पीटर को लड़ने से मना किया, उन्होंने कहा—'अपनी तलवार फेंक दो, पीटर ! जो तलवार से दूसरे पर वार करता है, उसका अंत भी तलवार से ही होता है। हिंसा पाप का मार्ग है।'

प्रभु ईसा की यह बात सुनकर उनके भक्तों ने अपना सिर झुका लिया। सिपाही उन्हें पकड़ कर ले गए। उन्हें लकड़ी के क्रास पर कांटों का ताज पहना कर तथा उनके हाथों और पैरों में कीलें ठोंक कर जड़ दिया गया। ऐसी क्रूर सज़ा पाने पर भी ईसा मसीह मुस्कराते ही रहे। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की—'प्रभु, इन्हें क्षमा कर। ये नहीं

जानते कि ये क्या कर रहे हैं।'

ईसा मसीह शहीद हो गए, लेकिन सच पूछा जाए तो सूली पर चढ़कर वे अमर हो गए। दुनिया के वे गरीब लोग जिन पर लगातार अत्याचार करते रहना उन दिनों कोई अन्याय या पाप नहीं माना जाता था, अब इतने सजग हो गए थे कि उन्हें उनकी पुरानी स्थिति में रखना कठिन ही नहीं असंभव भी हो गया था। कुछ ही सदियों के भीतर ईसा मसीह का धर्म सारे यूरोप में फैल गया। प्रभु मसीह दीन-दुखियों के प्रतिपालक के रूप में आज तक याद किए जाते हैं।

मुद्रक : लक्ष्मी प्रिंटइंडिया, शहादरा, दिल्ली-32